International Journal of Information Movement Vol.2 Issue X February 2018)

Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 9-13

पैसा है मेरा देश : केदारनाथ अग्रवाल

भावना उपाध्याय
अतिथि प्राध्यापक
राजकीय महाविद्यालय सोमेश्वर
(अल्मोड़ा) उत्तराखण्ड
ईमेल: lmuadntl25@gmail.com

सारांश:

आजादी के इतने सालों बाद भी हमारा देश आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के बजाय दिन–प्रतिदिन पिछड़ता ही चला जा रहा है। आज के समय में पैंसा मनुष्य की कमजोरी बन चुका है। जिसके पास करोड़ों की धन–दौलत है, वही आदमी समाज में प्रतिष्ठित समझा जाता है।

पैंसे के खातिर ही समाज को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। जिसमें उच्च वर्ग के अन्तर्गत सेठ–साहूकार, पूँजीपति, जमींदार, उद्योगपति आदि आते हैं। मध्यवर्ग के अन्तर्गत नौकरीपेशा लोगों को सम्मिलित किया जाता है, जो हमेशा उच्च वर्ग के व्यक्तियों का सहारा लेकर तरक्की प्राप्त करना चाहते हैं। इस वर्ग का व्यक्ति हमेशा एक ही सोच में डूबा रहता है कि आँखिर किस तरह से खूब पैंसा कमाया जाय। यह मध्य वर्ग पैंसे के पीछे भागता रहता है।

निम्न वर्ग के अन्तर्गत उन गरीब किसानों, मजदूरों आदि को सम्मिलित किया जाता है, जो दो वक्त की रोटी जुटा पाने में भी असमर्थ सिद्ध होते हैं। निम्न वर्ग के व्यक्ति तो सुखी सम्पन्न जीवन व्यतीत करने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

हमारे देश की आर्थिक विषमता की खाई दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।
निम्न वर्ग के व्यक्तियों को अपना जीवन बसर करने के लिए उच्च वर्ग के लोगों से कर्जा लेना ही पड़ता है और इनसे कर्जा लेने का मतलब है कि अपनी पूरी जिन्दगी इनके हाथों में सौंप देना। गरीब आदमी कभी भी इस कर्ज की समस्या से उभर नहीं पाता।

वर्तमान समय में महंगाई एवं बेरोजगारी ने भी एक भयंकर समस्या का रूप धारण लिया है। जहाँ एक ओर वस्तुओं की कीमतें आकाश गंगा में डुबकियाँ लगाने चली गयी हैं, वहीं दूसरी ओर पढ़े–लिखे नव–युवक समय पर नौकरी न मिलने के कारण आत्महत्या का रास्ता तक अपना ले रहे हैं।

हमारे देश की इस आर्थिक विषमता पर हिन्दी के कई सुप्रसिद्ध कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है, जिनमें प्रगितिशील काव्यधारा के कवि केदारनाथ अग्रवाल का नाम अग्रणी है।

मुख्य शब्द: अर्थ, देश, समाज, आम जनता, आर्थिक विषमता, अमीरी, गरीबी

जिस देश की अर्थव्यवस्थ जितनी सशक्त एवं सुदृढ़ होती है, वह देश उतना ही अधिक विकसित होता है। हमारे देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति आज अर्थ पर ही आधारित है। समग्र राष्ट्र को अर्थ ही संचालित कर रहा है।

वर्तमान युग को यदि 'अर्थ युग' कहा जाये तो इसमें कोई अतिश्योक्ति या आश्चर्य वाली बात नहीं है। क्योंकि आज के समय में अर्थ हमारे समाज व मनुष्य के जीवन में इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि इसने हमारे पारिवारिक, सामाजिक तथा मानवीय सम्बन्धों तक को झकझोर कर रख दिया है।

अर्थ का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। जिसके कारण हमारे समाज में असमानताएँ बढ़ती जा रही है। अर्थ के आधार पर हमारा समाज उच्च, मध्य व निम्न वर्गों में विभाजित हुआ है।

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ अग्रवाल ने एक कवि के व्यक्तित्व को भी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से अलग मानने के बजाय सदैव इसके साथ जुड़ा हुआ माना है।
इनका मानना था कि समाज का निर्माण आर्थिक आधार पर ही सम्भव है। अर्थ के आधार पर ही देश की राजनीति भी बनती है तथा संस्कृति का उत्थान भी होता है। हमारा समाज, नीति व राजनीति देश की अर्थव्यवथा पर ही टिके रहते हैं। अतः एक कवि को इन सबसे अलग नहीं माना जा सकता, क्योंकि किसी भी कवि की भावधारा और विचारधार दोनों ही अर्थनीति से ही निःसृत होती हैं।

अपने 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' काव्य संग्रह की 1940 में लिखी 'गाँव की औरतें' शीर्षक कविता में कवि ने देश की उस समय की आर्थिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है, जब सन् 1939 में द्वितीय महायुद्ध के समय देश को भयानक

अर्थकष्टों का सामना करना पड़ा था। अत्यधिक कठिन परिश्रम करने के बावजूद भी जनता दो जून की रोटी जुटा पाने में असमर्थ सिद्ध हो रही थी।

उस समय केदारनाथ अग्रवाल की सम्पूर्ण संवेदना गाँव की उन औरतों के लिए उमड़–उमड़ कर उनकी कविता में प्रतिबिम्बित हो रही थी, जो औरतें काफी मेहनत–मशक्कत करके पत्थर को रगड़–रगड़कर और उसमें सूखा–पिसान, फाँक–फाँक कर दो जून की रोटी जुटा पाने में लगी रहती थी। कवि कहते हैं कि–

''गाँवों की औरतें,
गन्दी गोठरियों में हाँफती–
खाँसती, खसोटती रूखे बाल
घिसती हैं जाँता जटिलतर;
X X X
सूखा–पिसान, फाँक–फाँक कर
पीठ–पेट एक कर–हाड़ तोड़
मरती हैं पत्थर रगड़गर!!''[1]

इनकी इस कविता में आक्रोश फूट–फूट कर भरा हुआ है। इसको पढ़कर यह साफ–साफ पता चलता है कि उस समय देश की जनता की आर्थिक स्थिति कैसी रही होगी।

1943 में देश की जनता की आर्थिक स्थिति के और ज्यादा बदत्तर होने पर केदार जी ने इस आर्थिक संकट के सवाल को सीधे आजादी के सवाल के साथ जोड़ दिया। इनके 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' काव्य संग्रह के 'बाप बेटा बेचता है' कविता में आर्थिक प्रश्न राष्ट्रीय आत्म सम्मान का प्रश्न बन जाता है।
उस समय की आम जनता की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि अर्थ के अभाव में एक पिता को अपने बेटे को तक बेचना पड़ रहा है। इतना सब कुछ हो रहा है फिर भी सारा राष्ट्र हाथ पर हाथ धरे देख रहा है।
बेटे को बेचता देख माँ अचेतन मूर्छता से रोती है तथा शर्म के कारण बाप की छाती धधकती है।
इस दारुण स्थिति का हृदय स्पर्शी चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं कि–

''बाप बेटा बेचता है
शर्म से आँखें न उठती,
रोष से छाती धधकती,
और अपनी दासता को शूल उद को छेदता है
बाप बेटा बेचता है।''[2]

देश की आम जनता की आर्थिक स्थिति के प्रति केदारनाथ की संवेदना सहज एवं स्वअनुभूत थी। वकील होने के बावजूद भी इन्हें अनेक अर्थकष्टों का सामना करना पड़ा।

अपनी 'धनाभाव में' शीर्षक कविता में इन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति के माध्यम से पूरे बाँदा निवासियों की आर्थिक स्थिति को सबके सामने लाकर प्रकट कर दिया है।

केदार जी के दरवाजे पर एक डकिया खड़ा है, जो अपने साथ वी0पी0 लेकर आया है किन्तु इनके पास उस वी0पी0 को छुड़ाने के लिए साढ़े तेईस रुपये तक नहीं हैं। धन के अभाव के कारण इन्हें मजबूर होकर डाकिये से अगले दिन आने की प्रार्थना करनी पड़ती है। उस समय इनकी सारी ऊर्जा शक्ति व सामर्थ्य क्षीर्ण हो जाता है क्योंकि इतनी विद्या अर्जन करने के बावजूद भी यदि मनुष्य को पैसे के अभाव में अपमानित होना पड़े तो इससे अधिक दुख का विषय और क्या हो सकता है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब एक सरकारी वकील को ऐसे आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ रहा है तो आम जन की क्या दशा होती होगी। अर्थाभाव के कारण अपनी दयनीय दशा को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं कि–

''वी0पी0 का रुपिया देना है!
खड़ा डाकिया देख सामने परेशान हूँ,
टका नहीं है!
X X X X
मैं मनुष्य हूँ,
लेकिन रुपयों के अभाव में
महामूर्ख हूँ ;
मेरी विद्या काम न आई!
मेरा जीवन निष्फल लगता!!''[3]

न जाने कितने ही आर्थिक संकटों के बावजूद भी कवि आशावादी बने रहे कि एक न एक दिन ऐसा जरूर आयेगा जब हमारा देश प्रगति की ओर अग्रसर होगा। वकील होकर भी ये आर्थिक तंगी को झेलते रहे। पर इन्होंने कभी भी गलत तरीके से पैसा कमाने की नहीं सोची।

वकालत के पैसे में जो चालाकी अपेक्षित होती है, ये उससे मीलों दूर रहकर एक चरित्रवान व्यक्ति की मिसाल बने रहे। पैंसा गृहस्थ जीवन का एक सुदृढ़ आधार होता है किन्तु केदारनाथ ने अपने पारिवारिक जीवन को झूठ, अन्याय, छल–कपट आदि के द्वारा कमाये गये पैंसे से दूर रखकर उसे पवित्र बनाये रखा। यही कारण है कि अर्थ के अभाव में भी कवि का मस्तक सदैव गर्वोन्नत रहा।

पैसा ही हमारे देश की विषमता का एक प्रमुख कारण रहा है और यह आर्थिक विषमता कवि केदार की नजरों से कभी ओझल नहीं होने पायी। वर्तमान समय में पैंसे का ही सबसे अधिक बोल–बाला है। आज मनुष्य हर काम को सिर्फ पैंसे कमाने के लिए ही करता है। यह पैंसा मनुष्य में दिमाग में वैसे ही छाया रहता है जैसे कि हरे खेत में सुअर।

अब पैंसा ही सर्वशक्तिमान है। पैंसे के अभाव में आदमी कोई महत्व नहीं रखता है। पैंसे के खतिर मनुष्य कुछ भी करने को तैयार रहता है। वह जघन्य से जघन्य अपराध करने में भी संकोच नहीं करता।

कवि केदार कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में अब रिश्ते–नातों का कोई महत्व नहीं रह गया है, अब वह पैंसे को भी माई–बाप कहने लगा है–

''क्योंकि
आप
बार–बार गड्डे में गिरते हैं
समय के सूरज से
आँख मूदे रहते हैं
रुपये को
माई बाप कहते हैं।''[4]

अपनी 'पैटर्न' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं कि अब चाहे देश हो या घर हो, हर जगह पैंसे को ही पूजा जाता है। चाहे ब्याह हो या चुनाव पैंसे के बिना न ब्याह अच्छा हो सकता है और न ही चुनाव–

''पैटर्न
वही है
पैंसे वाला
ब्याह हो या चुनाव।''[5]

वर्तमान समय में अमीरी–गरीबी के बीच की खाई दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज अमीर व्यक्ति और अधिक अमीर तबा गरीब और अधिक गरीब होता चला जा रहा है।

अमीर आदमी के बच्चों को जहाँ दूध, मक्खन के साथ रोटी खाने को मिलती है, वहीं गरीब के बच्चे भूख से तड़पकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। देश में कर्ज की समस्या बढ़ती जा रही है। गरीब आदमी हो इन अमीरों के सामने कर्ज के लिए हाथ फैलाने ही पड़ते हैं क्योंकि अपनी छोटी सी तनख्वाह में वे घर का पूरा खर्चा उठा पाने में असमर्थ होते हैं। गिने–चुने पैंसों में घर चलाना कितना मुश्किल होता है इस बात का अनुभव कवि केदार को भी हुआ था।

अपनी 'बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी' काव्य संग्रह की 'छोटी सी तनख्वाह हमारी' कविता में लिखा है कि यह छोटी सी तनख्वाह एक छोटी चिड़िया के समान होती है। यह हमसे बहुत डरती है और इसीलिए वह जल्दी से उड़ जाती है।

यह हमारे खाली घर में मुश्किल से सात दिन भी नहीं टिक पाती, फिर आठवें दिन से तीस दिन तक हमको जीना भी अच्छा नहीं लगता। हमको अन्दर–बाहर सब सूना सा लगता है और हम फिर से इस छोटी सी तनख्वाह के इन्तजार में बैठ जाते हैं–

''छोटी सी तनख्वाह हमारी
मुट्ठीभर की जैसे चिड़ियाँ,
उड़ जाती है फुर से जल्दी,
वह इतना डरती है हमसे
और हमारे खाली घर से
नहीं सात दिन भी टिकती है।''[6]

देश में आर्थिक विषमताओं के चलते महंगाई भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। महंगाई के चलते वस्तुओं की कीमतें आम–आदमी की पहुँच से परे हो गयी हैं। मनुष्य पैंसे के सामने बौना होता जा रहा है।

अमीरों के पास करोड़ों की धन दौलत है तो गरीब एक–एक कौड़ी के लिए मुहताज है। देश की इस आर्थिक विषमता का वर्णन करते हुए कवि केदार अपनी 'पैंसा है मेरा देश' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि हमारे देश में किसी की जेब में पैंसा है तो किसी की जेब में नहीं। यहाँ कपड़ा बुनने वाले हाथ तो कुछ गिने–चुने ही हैं पर उन कपड़ों को फाड़ने वाले हाथ बहुत सारे हैं।

हमारे देश की इस वर्तमान आर्थिक विषमता एवं बेबसी का इससे अधिक यथार्थ रूप में चित्रण और कौंन कर सकता है, जो केदार नाथ ने किया है। वे लिखते हैं कि–

''पैंसा है
मेरा देश
जो किसी की जेब में है
और
किसी की जेब में
नहीं है
कपड़ा है
मेरा देश
जिसे बुनते हैं कुछ हाथ
और
फाड़ते हैं
बहुत से लोग।''[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे देश की वर्तमान आर्थिक विषमता ने गरीब आदमी की रीढ़ की हड्डी को तोड़कर रख दिया है।

प्रसिद्ध कवि केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविताओं में वर्तमान युग में पैंसे के महत्व एवं उसकी विषमता को यथार्थ के साथ चित्रित किया है। वह उनके काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है।

संदर्भ:

1. जो शिलाएँ तोड़ते हैं – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–77
2. वहीं – पृ0–117
3. बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–94
4. कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–177
5. मार प्यार की थापें – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–20
6. बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–178
7. आग का आईना – अग्रवाल केदारनाथ, पृ0–76

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(क) – आधार ग्रन्थ :

01–	आग का आईना	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद
02–	कहे केदार खरी–खरी	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद
03–	कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद
04–	जो शिलाएँ तोड़ते हैं	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद
05–	बसन्त में प्रसन्न हुई पृथवी	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद
06–	मार प्यार की थापें	अग्रवाल केदारनाथ–प्रथम संस्करण–2009, साहित्य भण्डार इलाहाबाद

(ख)- सहायक ग्रन्थ :

01– केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में ग्रामीण चेतना — राजभरे डॉ0 डी0जी0–पराग प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015

02– केदारनाथ अग्रवाल कविता का लोक–आलोक — भदौरिया सन्तोष, पुण्डरीक नरेन्द्र–यश पब्लिकेशन्स दिल्ली, मुम्बई, संस्करण, 2012

03– प्रगतिशील कविता और केदार — गौतम डॉ0 गिरिजा शंकर–शताक्षी प्रकाशन रायपुर, प्रथम संस्करण, 2010

04– बाँदा का योगी — केदारनाथ अग्रवाल–विश्वरंजन–शिल्पायन दिल्ली, संस्करण, 2011

(ग) – पत्र-पत्रिकाएँ:

01– आलोचना, त्रैमासिक, सहस्राब्दी अंक बयालीस, जुलाई–सितम्बर, 2011, प्रधान सम्पादक, सिंह नामवर।